चौदहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

पृथोः पुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिवादिनौ । शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत ॥१॥
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् । प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं वृजाजिनौ ॥२॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः । हविर्धानान्महाभाग येन संवर्धिताः प्रजाः ॥३॥
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां विश्रुता मुने । प्राचीनबर्हिरभवत्ख्यातो भुवि म्हाबलः ॥४॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारो महीपतिः । महतस्तपसः पारे सवर्णायां महामते ॥५॥
सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः । सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥६॥
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः । दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥७॥

श्रीमैत्रेय उवाच

यदर्थं ते महात्मानस्तपस्तेपुर्महामुने । प्रचेतसः समुद्राम्भस्येतदाख्यातुमर्हसि ॥८॥

श्रीपराशर उवाच

पित्रा प्रचेतसः प्रोक्ताः प्रजार्थममितात्मना । प्रजापतिनियुक्तेन बहुमानपुरस्सरम् ॥९॥

प्राचीनबर्हिरुवाच

ब्रह्मणा देवदेवेन समादिष्टोऽस्म्यहं सुताः । प्रजाः संवर्द्धनीयास्ते मया चोक्तं तथेति तत् ॥१०॥
तन्मम प्रीतये पुत्राः प्रजावृद्धिमतन्द्रिताः । कुरुध्वं माननीया वः सम्यगाज्ञा प्रजापतेः ॥११॥

महाराज पृथु के वंश का विस्तार, प्राचीनबर्हि का जन्म, प्रचेतसों का पुत्र प्राप्ति की कामना से भगवदाराधन तथा प्रचेताओं द्वारा भगवत् स्तुति

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— महाराज पृथु के दो पुत्र हुए, अन्तर्द्धान और वादी । अन्तर्धान की पत्नी शिखण्डिनी ने अन्तर्धान से हविर्धान नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥१॥ हविर्धान से अग्नि के वंश में उत्पन्न होने वाली धिषणा ने छह पुत्रों को उत्पन्न किया प्राचीनबर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, वृज और अजिन ॥२॥ हे महाभाग ! हविर्धान से ऐश्वर्य सम्पन्न प्राचीनबर्हि उत्पन्न हुए । ये महान् प्रजापति थे । उन्होंने यज्ञ के द्वारा प्रजाओं की अत्यधिक वृद्धि की ॥३॥ हे मुने ! उनके प्राचीनाग्र कुश सम्पूर्ण पृथिवी में फैले हुए थे, इसीलिए उनका नाम प्राचीनबर्हि प्रसिद्ध हुआ, वे महाबलवान् थे ॥४॥ हे महामते ! महान् तपस्या के पश्चात् उन्होंने समुद्र की पुत्री सवर्णा से विवाह किया॥५॥ उस सवर्णा से प्राचीनबर्हि के दश पुत्र हुए वे सभी धनुर्वेदपारंगत थे तथा प्रचेता कहलाये ॥६॥ उन सबों ने समुद्र के जल के भीतर रहकर दश हजार वर्ष तक समान धर्म का पालन करते हुए तपस्या किया ॥७॥ **श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा—** हे महामुने ! उन महात्मा प्रचेताओं ने जिस प्रयोजन से समुद्र के जल में रहकर तपस्या की आप उसे बतलायें ॥८॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे महामुने ! एक बार प्रचेताओं के महात्मा प्रजापति पिता ने सम्मान पूर्वक उनसे सन्तानोत्पत्ति करने के लिए कहा ॥९॥ **प्राचीनबर्हि ने कहा—** पुत्रों देवों के आराध्य ब्रह्माजी ने मुझे इस बात का आदेश दिया है कि तुम प्रजाओं की वृद्धि करो और मैंने भी उनसे कहा बहुत अच्छा ॥१०॥ अतएव हे पुत्रों ! मेरी प्रसन्नता के लिए तुमलोग भी सावधानी पूर्वक प्रजाओं की वृद्धि करो क्योंकि तुमलोगों को भी प्रजापति की आज्ञा का समादर करनी चाहिए ॥११॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् वे राजकुमार अपने पिता की

श्रीपराशर उवाच

ततस्ते तत्पितुः श्रुत्वा वचनं नृपनन्दनाः । तथेत्युक्त्वा च तं भूयः पप्रच्छुः पितरं मुने ॥१२॥

प्रचेतस ऊचुः

येन तात प्रजावृद्धौ समर्थाः कर्मणा वयम् । भवेम तत् समस्तं नः कर्म व्याख्यातुमर्हसि ॥१३॥

पितोवाच

आराध्य वरदं विष्णुमिष्टप्राप्तिमसंशयम् । समेति नान्यथा मर्त्यः किमन्यत्कथयामि वः ॥१४॥

तस्मात्प्रजाविवृद्ध्यर्थं सर्वभूतप्रभुं हरिम् । आराधयत गोविन्दं यदि सिद्धिमभीप्सथ ॥१५॥

धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं चान्विच्छतां सदा । आराधनीयो भगवाननादिपुरुषोत्तम ॥१६॥

यस्मिन्नाराधिते सर्गं चकारादौ प्रजापतिः । तमाराध्याच्युतं वृद्धिः प्रजानां वो भविष्यति ॥१७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्येवमुक्तास्ते पित्रा पुत्राः प्रचेतसो दश । मग्नाः पयोधिसलिले तपस्तेपुः समाहिताः ॥१८॥

दशवर्षसहस्राणि न्यस्तचित्ता जगत्पतौ । नारायणे मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकपरायणे ॥१९॥

तत्रैवावस्थिता देवमेकाग्रमनसो हरिम् । तुष्टुवुर्यस्तुतः कामान् स्तोतुरिष्टान्प्रयच्छति ॥२०॥

श्रीमैत्रेय उवाच

स्तवं प्रचेतसो विष्णोः समुद्राम्भसि संस्थिताः । चक्रुस्तन्मे मुनिश्रेष्ठ सुपुण्यं वक्तुमर्हसि ॥२१॥

श्रीपराशर उवाच

शृणु मैत्रेय गोविन्दं यथापूर्वं प्रचेतसः । तुष्टुवुस्तन्मयीभूताः समुद्रसलिलेशयाः ॥२२॥

बात सुनकर कहे कि बहुत अच्छा, और उसके पश्चात् उन सबों ने अपने पिता से पूछा ॥१२॥ **प्रचेताओं ने कहा—** हे तात ! जिस कर्म के करने से हमलोग प्रजा की वृद्धि करने में समर्थ हो सकते हैं, आप हमें उस कर्म को पूर्ण रूप से बतलायें ॥१३॥ **पिता (प्राचीनबर्हि) ने कहा—** वरदान देने वाले भगवान् विष्णु की ही आराधना करने से संसारी जीव अपने अभीष्ट अर्थ को प्राप्त करता है, किसी दूसरे साधन से नहीं । अतएव इसके अतिरिक्त मैं क्या बतलाऊँ ?॥१४॥ अतएव यदि तुमलोग सिद्धि प्राप्त करना चाहते हो तो प्रजाओं की वृद्धि के लिए सभी जीवों के स्वामी श्रीहरि भगवान् गोविन्द की आराधना करो ॥१५॥ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करना चाहने वालों के लिए अनादि, पुरुषोत्तम भगवान् ही आराधनीय हैं ॥१६॥ जिन श्रीभगवान् की आराधना करके प्रजापति ब्रह्माजी सृष्टि के आरम्भ में जगत् की सृष्टि की उन भगवान् अच्युत की आराधना करने से तुमलोगों की प्रजाओं की वृद्धि होगी ॥१७॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** पिता के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर दशो प्रचेता समुद्र के जल में डूब करके सावधानी पूर्वक तप करने लगे ॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दश हजार वर्षों तक जगत् के स्वामी तथा सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भगवान् नारायण में ही वे अपना मन लगाये रहे ॥१९॥ उस जल में ही रहकर वे सब एकाग्र मन से देवाधिदेव श्रीहरि की स्तुति किए जिस स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् स्तुति करने वालों की समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ॥२०॥ **श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! समुद्र के जल के भीतर रहकर प्रचेताओं ने भगवान् विष्णु के जिस अति पवित्र स्तुति को किया उसे आप हमें बतलाइये ॥२१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे मैत्रेय ! समुद्र के जल में स्थित रहकर प्रचेताओं ने तन्मय होकर भगवान् गोविन्द की जो स्तुति की उसे आप सुनें ॥२२॥ **प्रचेताओं ने कहा—** जिनमें सम्पूर्ण वाणियों की नित्य प्रतिष्ठा है उन सम्पूर्ण

प्रचेतस ऊचु:

नताः स्म सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती। तमाद्यन्तमशेषस्य जगतःपरमं प्रभुम् ॥२३॥
ज्योतिराद्यमनौपम्यमण्वनन्तमपारवत् । योनिभूतमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥२४॥
यस्याहः प्रथमं रूपमरूपस्य तथा निशा। सन्ध्या च परमेशस्य तस्मैकालात्मने नमः ॥२५॥
भुज्यतेऽनुदिनं देवैः पितृभिश्च सुधात्मकः। जीवभूतः समस्तस्य तस्मै सोमात्मने नमः ॥२६॥
यस्तमांस्यत्ति तीव्रात्मा प्रभाभिर्भासयन्नभः। घर्मशीताम्भसां योनिस्तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥२७॥
काठिन्यवान् यो बिभर्त्ति जगदेतदशेषतः। शब्दादिसंश्रयो व्यापी तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥२८॥
यद्योनिभूतं जगतो बीजं यत्सर्वदेहिनाम्। तत्तोयरूपमीशस्य नमामो हरिमेधसः ॥२९॥
यो मुखं सर्वदेवानां हव्यभुक्कव्यभुक् तथा। पितॄणां च नमस्तस्मै विष्णवे पावकात्मने॥३०॥
पञ्चधावस्थितो देहे यश्चेष्टां कुरुतेऽनिशम्। आकाशयोनिर्भगवाँस्तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥३१॥
अवकाशमशेषाणां भूतानां यः प्रयच्छति। अनन्तमूर्तिमान्च्छुद्धस्तस्मै व्योमात्मने नमः ॥३२॥
समस्तेन्द्रियसर्गस्य यः सदा स्थानमुत्तमम्। तस्मै शब्दादिरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे॥३३॥
गृह्णाति विषयान्नित्यमिन्द्रियात्मा क्षराक्षरः। यस्तस्मै ज्ञानमूलाय नताः स्म हरिमेधसे॥३४॥
गृहीतानिन्द्रियैरर्थानात्मने यः प्रयच्छति। अन्तः करणरूपाय तस्मै विश्वात्मने नमः॥३५॥
यस्मिन्ननन्ते सकलं विश्वं यस्मात्तथोद्गतम्। लयस्थानं च यस्तस्मै नमः प्रकृतिधर्मिणे॥३६॥
शुद्धः सँल्लक्ष्यते भ्रान्त्या गुणवानिव योऽगुणः। तमात्मरूपिणं देवं नताःस्म पुरुषोत्तमम् ॥३७॥

जगत् के जन्मस्थान एवं लयस्थान स्वरूप परम प्रभु श्रीभगवान् को हम प्रणाम करते हैं ॥२३॥ जो आद्य ज्योति स्वरूप, निरुपमेय, स्वरूप, अनन्त, अपार तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् के कारण स्वरूप हैं ॥२४॥ जिन रूपरहित परमात्मा का प्रथम रूप दिन, रात और सन्ध्या हैं, उन काल स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥२५॥ प्रतिदिन जिनका देवता और पितृगण भोग करते हैं, उन अमृतमय तथा जो सम्पूर्ण जगत् के जीव स्वरूप हैं, उन सोम स्वरूप (चन्द्रमा स्वरूप) भगवान् को नमस्कार है ॥२६॥ जो तीव्र स्वरूप परमात्मा अपनी प्रभा से अन्धकार का भक्षण करते हैं और आकाश को प्रकाशित करते हैं, तथा जो घाम (धूप), शीत तथा जलों के कारणस्वरूप हैं उन सूर्य स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥२७॥ जो काठिन्य गुण से सम्पन्न होकर, इस सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं, जो शब्द आदि (स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध) पाँचो विषयों के आश्रय तथा व्यापक हैं, उन भूमि स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥२८॥ जो जगत् के कारण स्वरूप हैं, तथा सभी शरीरधारियों के बीज स्वरूप हैं, भगवान् श्रीहरि के उस जल स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं ॥२९॥ जो सभी देवताओं के हव्यभुक् तथा पितृगणों के कव्यभुक् रूपी मुख हैं, उन पावक (अग्नि) स्वरूप भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥३०॥ उन वायु स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है जो प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान रूप से शरीर के भीतर स्थित हैं तथा निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं तथा आकाश ही जिनका योनि (कारण) है ॥३१॥ जो सम्पूर्ण जीवों को अवकाश प्रदान करते हैं, जो अनन्तमूर्ति हैं तथा शुद्ध हैं, उन आकाश स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥३२॥ जो सम्पूर्ण इन्द्रियों की सृष्टि के सदा उत्तम स्थान हैं, उन शब्दादि स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है ॥३३॥ जो शरीर से निकलकर विषयों को ग्रहण करने वाले चक्षु तथा अक्षर श्रोत्र आदि इन्द्रिय स्वरूप, परमात्मा विषयों का ग्रहण करते हैं, जो ज्ञान के मूल हैं, उन श्रीहरि को नमस्कार है ॥३४॥ उन अन्तःकरण स्वरूप विश्वात्मा (सम्पूर्ण जगत् की आत्मा) परमात्मा को नमस्कार है, जो इन्द्रियों के द्वारा गृहीत विषयों को आत्मा को प्रदान करते हैं ॥३५॥ प्रलयकाल में जिन अनन्त परमात्मा में यह सम्पूर्ण जगत् सूक्ष्म रूप से स्थित रहता है, तथा सृष्टि काल के आने पर जगत् जिससे उत्पन्न होता है, तथा जो

अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम् । नताः स्म तत्परं ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥३८॥
अदीर्घह्रस्वमस्थूलमनणवश्यामलोहितम् । अस्नेहच्छायमतनुमसक्तमशरीरिणम् ॥३९॥
अनाकाशमसंस्पर्शमगन्धमरसं च यत् । अचक्षुःश्रोत्रमचलमवाक्पाणिममानसम् ॥४०॥
अनामगोत्रमसुखमतेजस्कमहेतुकम् । अभयं भ्रान्तिरहितमनिद्रमजरामरम् ॥४१॥
अरजोऽशब्दममृतमप्लुतं यदसंवृत्तम् । पूर्वापरे न वै यस्मिंस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥४२॥
परमेशत्वगुणवत्सर्वभूतमसंश्रयम् । नताः स्म तत्पदं विष्णोर्जिह्वादृग्गोचरं न यत् ॥४३॥

श्रीपराशर उवाच

एवं प्रचेतसो विष्णुं स्तुवन्तस्तत्समाधयः । दशवर्षसहस्राणि तपश्चेरुर्महार्णवे ॥४४॥
ततः प्रसन्नो भगवांस्तेषामन्तर्जले हरिः । ददौ दर्शनमुन्निद्रनीलोत्पलदलच्छविः ॥४५॥
पतत्रिराजमारूढमवलोक्य प्रचेतसः । प्रणिपेतुः शिरोभिस्तं भक्तिभारावनामितैः ॥४६॥
ततस्तानाह भगवान्व्रियतामीप्सितो वरः । प्रसादसुमुखोऽहं वो वरदः समुपस्थितः ॥४७॥
ततस्तमूचुर्वरदं प्रणिपत्य प्रचेतसः । यथापित्रा समादिष्टं प्रजानां वृद्धिकारणम् ॥४८॥
स चापि देवस्तं दत्त्वा यथाभिलषितं वरम् । अन्तर्धानं जगामाशु ते च निश्चक्रमुर्जलात् ॥४९॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

सम्पूर्ण जगत् के लय स्थान हैं, उन प्रकृति स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥३६॥ जो गुण रहित तथा शुद्ध होकर भी भ्रम के कारण प्रकृति के गुणों से युक्त के समान प्रतीत होते हैं उन आत्मा रूपी (पुरुष रूपी) भगवान् पुरुषोत्तम को नमस्कार है॥३७॥ विकार रहित, अज, शुद्ध, निर्गुण (प्राकृतिक गुण संसर्ग से रहित) तथा निरञ्जन (प्रकृत्यादि की अपेक्षा) श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप भगवान् विष्णु के परमपद मुक्तात्मा रूप परमात्मा को नमस्कार है ॥३८॥ जो दैर्घ्य, ह्रस्वत्व, स्थूलत्व, अणुत्व, श्यामत्व, लोहितत्व, द्रवत्व, कान्ति, शरीर, आसक्ति, देहधारित्व आदि (सांसारिक) धर्मों से रहित हैं ॥३९॥ जो अवकाश, संस्पर्श, गन्ध तथा रस से रहित हैं चक्षु, श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से रहित, अचल, वाक्, पाणि आदि कर्मेन्द्रियों से रहित तथा मन से रहित हैं ॥४१॥ जो नाम, गोत्र, और तेज से रहित, कारणहीन, भय, भ्रम, निद्रा, जरा तथा मृत्यु से रहित ॥४१॥ रजोगुण रहित, शब्द रहित, अमृत, अप्लुत (गति रहित) पूर्व तथा पर वस्तु से रहित तथा अक्षर स्वरूप जो भगवान् विष्णु का परमपद (वैकुण्ठ धाम) है ॥४२॥ परमेशत्व (सर्वश्रेष्ठ नियामकत्व) गुण से सम्पन्न, सर्वस्वरूप तथा अनाधार हैं तथा जो जिह्वा तथा चक्षुरादि इन्द्रियों के विषय नहीं बनते उन भगवान् विष्णु को हम नमस्कार करते हैं ॥४३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस तरह से भगवान् विष्णु में ही समाधिस्थ रहकर उनकी स्तुति करते हुए प्रचेतागण दश हजार वर्ष पर्यन्त महार्णव में तपस्या करते रहे ॥४४॥ उसके पश्चात् प्रसन्न होकर नीलकमल के समान शोभा वाले भगवान् श्रीहरि उन्हें जल के भीतर ही दर्शन दिए ॥४५॥ गरुड़ के ऊपर बैठे हुए श्रीभगवान् को देखकर भक्ति भावना से भरकर प्रचेताओं ने उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥४६॥ उसके बाद श्रीभगवान् ने प्रचेताओं से कहा वर माँगो । मैं तुमलोगों पर प्रसन्न हूँ वर देने के लिए आया हूँ ॥४७॥ उसके पश्चात् प्रचेताओं ने वर प्रदाता श्रीभगवान् को प्रणाम करके, जिस प्रकार से उनके पिता ने प्रजावृद्धि करने के लिए आज्ञा दिया था उसे बतलाया ॥४८॥ श्रीभगवान् भी प्रचेताओं को अभिलषित वर प्रदान करके शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये और वे प्रचेतागण भी जल से बाहर निकले ॥४९॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥